P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-9*(Part-2) December- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

आदिवासी कविताः एक परिदृश्य

सारांश

इस आलेख में समकालीन कविता परिदृश्य में उभरे आदिवासी कविता के हस्तक्षेप को रेखांकित किया गया है। पिछले दो दशक में युवा कवियों की उपस्थिति आदिवासी कविता के प्रति आश्वस्त करती है। आदिवासी कविता अपने जल जंगल जमीन के संघर्ष से उपजी कविता है। हिंदी कविता के इस पक्ष को आज एक सशक्त पक्ष कहा जा सकता है।

मुख्य शब्द : समकालीन हिन्दी कविता, आदिवासी कविता।

वीरेन्द्र भारद्वाज
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
शिवाजी कालेज,
दिल्ली, भारत

प्रस्तावना

समकालीन हिन्दी कविता की संरचना में विगत बीस वर्षों में व्यापक परिवर्तन देखने को मिला है। आठवें दशक के बाद हिन्दी कविता के मिजाज में आए परिवर्तनों पर नजर डाली जाए तो कुछ स्पष्ट धाराएँ नजर आती हैं। इन धाराओं के कवि और उनकी कविता ने वैचारिक स्तर पर तीन प्रकार की संरचनाओं को जन्म दिया है। पहली दलित कविता, दूसरी स्त्री कविता और तीसरी आदिवासी कविता। ध्यान देने वाली बात यह है कि ये तीनों प्रकार की कविताएँ हाशिये के समाज और उसके विमर्श से जुड़ी हुई हैं। दलित और स्त्री कविता को मुख्य धारा की कविता से अपनी अस्मिता के लिए काफी संघर्ष करना पड़ा है और इन दोनों काव्य–धाराओं ने साहित्य में अपनी जगह बना ली है। तीसरी धारा जिसको अभी आदिवासी कविता कहा जा रहा है या जिसकी सुगबुगाहट सुनाई दे रही है वह अभी गर्भ धारण की प्रक्रिया में है और यह भी संभव है कि इसके पैदा होने में पहले ही इस पर अणु–परमाणु और रासायनिक हथियारों का हमला आरम्भ हो जाए।

बहरहाल, संवेदना का जन्म तो हो चुका है और उसकी गूंज भी जल्दी ही सुनाई देने लगेगी। इधर के वर्षों में कुछ आदिवासी कवियों का आगमन या साहित्यिक फलक पर अवतरण हुआ है, जिनमें निर्मला पुतुल, अनुज लुगुन, प्रभात, अशोक सिंह, बाहरू सोनवणे, ग्रेस कुजूर इत्यादि की कविताओं से साक्षात्कार होता रहा है। एक नयी तरह की संवेदना से भरपूर इन कवियों की कविताएँ मुख्यधारा की कविताओं से किसी मायने में कमजोर नहीं है, भारी जरूर हैं। यह भारीपन जीवन के बीहड़ अनुभवों से निकलकर साहित्य के बीहड़ में अपनी अस्मिता की तलाश करता है। इस बीहड़ में भटक रहे आदिवासी कवि का सल्तनत पाने का स्वप्न नहीं है, राज्याभिषेक की आकांक्षा नहीं है बल्कि उसके सपनों में है–

एक जोड़ी बैल से हल जोतते हुए
खेतों के सम्मान को बनाए रखना
हमारे सपनों में रहा है
कोइल नदी के किनारे घर
जहाँ हमसे ज्यादा हमारे सपने हों
हमारी अर्थी शाही हो नहीं सकती

एक जोड़ी बैल और हल का सपना भी पूरा ना हो पाए तो उस सल्तनत को लेकर क्या होगा जिसको आदिवासी कविता पहले ही खारिज कर रही है। छोटे सपनों की यह कविता इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि जब कविता के विषय सूचना प्रौद्योगिकी की दिशा में रुख कर रहे हैं तब एक आदिवासी कवि खेत, बैल, हल और नदी को बचाने की पहल कर रहा है. यह अकारण नहीं है क्योंकि विकास के बाजारू बयार ने हमें ऐसे दोराहे पर लाकर पटक दिया है जहाँ एक तरफ पारम्परिक उत्पादन के साधन से लोग विहीन हो गए हैं वहीं दूसरी तरफ उनकी इतनी हैसियत नहीं है कि आधुनिक कल–कारखानों की मशीनरी का प्रयोग कर सकें। यह एक प्रकार की असमानता को जन्म देने की तैयारी है जिसको आदिवासी कवि समझ रहा है। आदिवासी कविता का विरोध विकास से नहीं है बल्कि उन तरीकों से है जिससे आदिवासी समाज को, अपनी जड़ों से काटना पड़ रहा है, अपनी परम्पराओं को खोना पड़ रहा है और अपनी

संस्कृति को अपनी आँखों के सामने उजड़ता हुआ देखना पड़ रहा है। इसलिए आदिवासी कविता की संरचना में उन सभी स्मृतियों के प्रति एक मोह दिखाई देता है जोकि आदिवासी अस्मिता के इतिहास से जुड़े है। ग्रेस फुजूर की कविता 'एक और जानी शिकार' में आदिवासी जीवन की स्मृतियों के खत्म होने की यही चिंता प्रकट होती है–

कहाँ गई वह सुगंध
महुआ और डोरी की
गूलर और केयोंद की
कहाँ खो गया बांसों का संगीत
और जाने कहाँ उड़ गई
'संधना' की सुगंध?

यह चिंता केवल आदिवासी जीवन की स्मृतियों के खत्म होने की ही नहीं है बल्कि 'प्रकृति' के खत्म होने की भी है। प्रकृति के उजड़ने की वाजिफ चिंता से हिन्दी कविता की कोई अन्य धारा संवेदित हुई हो ऐसा संभवतः दिखाई नहीं देता। यह आदिवासी कविता ही है जिसके सरोकारों में एक सरोकार प्रकृति को समझने और बचाने का भी है।

प्रभात की कविता 'प्रकृति की गंध' भी इसी जद्दोजहद से गुजरकर पाठक के सामने आती है। स्मृतियों को खंगालती हुई यह कविता प्रकृति की मनोरमता और सुन्दरता से धीरे–धीरे बंजर और विहीन होती हुई धरती की चिंता करती है–

क्या प्रकृति की गंध जैसी चीज भी
उघ जाएगी हमारी धरती से
चील की तरह।

इस प्रकार की कविताओं की संरचना पर गौर किया जाए तो एक समानता सबके यहाँ दिखाई देती है वह यह कि लगभग सभी कवि विकास के पैमाने के खिलाफ एक स्वर में सवाल करते दिखाई देते हैं जोकि उनकी अस्मिता के खिलाफ है। इन कविताओं को नक्सल समर्थित समझने की भूल न की जाए। बल्कि आदिवासी संवेदन से संपृक्त इन कविताओं में नक्सली समस्याओं के कारण आदिवासी समाज को जिन समस्याओं से दो–चार होना पड़ रहा है उसकी वास्तविक तस्वीर ही है। अशोक सिंह की कविता 'नक्सली जंगल में रह रहे एक आदिवासी दंपत्ति की व्यथा कथा' इसी सच से पाठक को रू–ब–रू करवाती है–

''हमारा यह जंगल
अब जंगल नहीं
जेल बन गया है चुड़की
जहाँ कैद होकर रह गए हैं हम सब
अपने ही घर–गाँव में
कैसे अजीब हालात हैं
बन्दूक के डर से
बंदूकों के साए में छुपे बैठे हैं हम सब''

अगर आदिवासी समाज का विश्वास बन्दूक पर होता तो ऐसा लिखने की जरूरत नहीं पड़ती। ऐसा नहीं है मैं किसी पूर्वाग्रह के कारण इस बात का समर्थन कर रहा हूँ, बल्कि समाज की इसी संवेदना से संवेदित 'बाहरू सोनवणे' की कविता भी मिलती है–

नक्सली और सरकार
दोनों का बन्दूक पर विश्वास है
डर पुलिस का नहीं
नक्सली का भी नहीं
डर बन्दूक का है

नक्सलियों और सरकार का विश्वास भले ही बन्दूक पर है

लेकिन इतना तो तय है कि आदिवासी समाज का विश्वास बन्दूक पर नहीं है। उसका विश्वास प्रेम पर है. प्रेम की दुनिया पर है जिसके लिए जगह कम पड़ती जा रही है. ऐसी स्थिति को देखकर आदिवासी कविता चिंतित है–

अब हम कहाँ मिलेंगे फूलमनी किस जंगल
किसी पहाड़ पर मिलेंगे हम दोनों!
गाँव के पिछवाड़े का सारा जंगल
कर गया धीरे–धीरे

इस चिंतन में दो चिंताएँ मुख्य हैं पहली प्रकृति के उजड़ने की दूसरी आदिवासियों के आवास की। विकास के भूमंडलीकृत स्वरूप का ही नतीजा है कि आदिवासी समाज संस्कृति और प्रकृति को उजड़ना पड़ा है।

इस कविता की चिंता में अस्मिता के खत्म होने की चिंता गहराई तक है। साथ ही एक चिंता आदिवासी समाज की निजता के खत्म होने की भी है। इस रूप में यह कविता आदिवासी समाज के अस्तित्व संधान की कविता भी बन जाती है।

आदिवासी कविता की संरचना वैचारिक स्तर पर अस्मिता तलाश की कविता लगती है। आदिवासी जीवन के गहन अनुभवों से उपजी इस कविता में जीवन के विविध रंग दिखाई देते हैं। जीवन के इन रंगों में 'विस्थापित का दर्द' का रंग अगर किसी ने देखा है तो वह यह समाज है। भारत के सभी कल–कारखाने केवल हमारे विकास की रौशन मीनारें नहीं हैं बल्कि विकास की इस रौशनी में इस देश की एक और तस्वीर दिखाई देती है, लेकिन यह तस्वीर सरकारी आंकड़ों में छिप के रह जाती है। कविता उस तस्वीर में रंग भरती है और जब वह तस्वीर पूरी होती है तो कुछ इस तरह नज़र आती है–

अगर हमारे विकास का मतलब
हमारी बस्तियों को उजाड़कर कल कारखाने बनाना है
तालाबों को भोथकर राजमार्ग
जंगलों का सफाया कर ऑफिसर्स कॉलोनियाँ बसानी हैं
और पुनर्वास के नाम पर हमें
हमारे ही शहर की सीमा से बाहर हाशिए पर धकेलना है

निर्मला पुतुल की कविता का यह काव्यांश विकास की सही पड़ताल है। इस कविता की संरचना में आक्रामकता इसकी अर्थगत संरचना है। अर्थगत संरचना ही कविता की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित करती है। अर्थगत संरचना का जन्म अस्मिता बोध का परिणाम है। अस्मिता–बोध का कारण आदिवासी अस्मिता के खिलाफ जा रहे विकास के पैमाने का परिणाम है। विकास के

विरोधाभास की उपज ही आदिवासी कविता है। आदिवासी अस्मिता से संबंधित कविताओं को पढ़ते हुए बराबर यह महसूस होता है कि इन कविताओं में अतीत का मोह कुछ अधिक है। अतीत की रागात्मकता विशेष रूप से आदिवासी कविता पर हावी है इस पर संदेह नहीं करना चालिए। यदि अतीत आदिवासी साहित्य का प्रस्थान बिंदू है तो परम्परा और आधुनिकता की टकराहट बराबर बनी रहती है, इसी का परिणाम है कि अनुज, प्रभात, ग्रेसी कुजूर, अशोक सिंह इत्यादि सभी कवियों की कविताओं में अतीत का मोह या अतीत को बचाने की चिंता अधिक है। जहाँ विकास आधुनिक का पर्याय होगा वहाँ आक्रामकता, संवेदना के स्तर पर जरूर होगी। संभवतः आदिवासी कविता की रचना प्रक्रिया का बिन्दू भी यही हो।

उद्देश्य

हिंदी कविता में आदिवासी लेखन, आदिवासी कविता की पहचान को रेखांकि करना। आदिवासी कविता के प्रतिनिधि कवियों की कविता के माध्यम से हिंदी कविता के समकालीन परिदृश्य का विवेचन।

निष्कर्ष

आदिवासी विमर्श समाज और साहित्य के लिए ताजी टटकी घटना है। अभी यह विमर्श गर्भ धारण की प्रक्रिया में है और गर्भ–धारण की प्रक्रिया से पूरी संरचना का अंदाजा नहीं लगाया जा सकता है। जब समाज की संरचना में ही विभिन्नताएँ हैं तो साहित्य के बारे में जितना भी लिखा जाए कम है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

समकालीन आदिवासी कविता, सं. हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन, जयपुर–302019
कथाक्रम, (त्रैमासिक पत्रिका), अंक–50, सं शैलेन्द्र सागर, महानगर विस्तार, लखनऊ
नगाड़े की तरह बजते शब्द– निर्मला पुत्तल
अपने घर की तलाश में– निर्मला पुत्तल
एकलव्य से संवाद– (कविता कोश), अनुज लुगुन
समुद्र से लौटते हुए– (कविता कोश) अनुज लुगुन
पेड़– (कविता कोश), अशोक सिंह